श्रावण शुक्ल १, मंगलवार, दिनांक-२४-०७-१९७९
गाथा-३०८-३११, प्रवचन-४

यह ३०८ से ३११ (गाथा) है। पहली लाईन चली है। तीन दिन चली, आज चौथा दिन है। क्या कहते हैं? ... **प्रथम...** मुख्य बात तो यह है कि... अमृतचन्द्राचार्य ऐसा कहते हैं... '**तावत्**' शब्द पड़ा है। मुख्य बात यह है कि **जीव क्रमबद्ध ऐसे...** जीव है, (उसकी) क्रमबद्धपर्याय होती है। यह परसों नहीं कहा था? कि आत्मा में क्रमवर्ती और अक्रमवर्ती गुण है। यह कल नहीं आया था। ...आत्मा जो वस्तु है, उसमें एक क्रमवर्ती और अक्रमवर्ती नाम का गुण है। जब क्रमबद्ध का निर्णय करते हैं कि जिस समय में जो पर्याय होनेवाली (है, वह) क्रमसर होगी, आगे-पीछे नहीं। पर से नहीं, आगे-पीछे नहीं। आहाहा! तो उसमें पुरुषार्थ कहाँ रहा? यह कहते हैं। क्रमबद्ध का निर्णय करते ही पर्याय का लक्ष्य छूट जाता है और ज्ञायक का लक्ष्य होता है, तब क्रमबद्ध का निर्णय (सच्चा) होता है। क्योंकि क्रमबद्ध है, वह पर्याय में है। द्रव्य में कुछ क्रमबद्ध है नहीं। द्रव्य में क्रमसर होना और अक्रम होना, ऐसा गुण है। समझ में आया?

कल तो थोड़ी यह बात की थी कि ३८वीं गाथा में ऐसा कहा है कि क्रम और अक्रम—दोनों पर्याय में हैं। कहा था? क्या? वह क्रम और अक्रम दूसरी चीज़ है। क्रम अर्थात् एक समय में एक गति (की पर्याय) होती है, दूसरे काल में दूसरी गति (की पर्याय होती है), तो यह गति क्रमसर है। परन्तु आतमा में योग, लेश्या, कषाय एक समय में हैं तो यह अक्रम कहने में आता है। पर्याय अक्रमसर होती है, ऐसा है नहीं। पर्याय तो क्रमबद्ध ही होती है। आहाहा! परन्तु यह क्रमबद्ध का निर्णय करने जाते हैं, वहाँ पर्याय पर लक्ष्य नहीं रहता। आहाहा! ज्ञायक सर्वज्ञस्वभावी मैं हूँ... सर्वज्ञस्वभावी हूँ। 'सर्वज्ञ' यह प्रवचनसार में कहा है कि 'असाधारण ज्ञान को कारण ग्रहकर' ऐसा संस्कृत पाठ है। (गाथा २१)।

जो असाधारण अर्थात् सर्वज्ञस्वभाव आत्मा का है, यह असाधारण गुण है, उसको 'कारणपने ग्रहकर' ऐसा पाठ है प्रवचनसार में। यहाँ तो याद आवे वह आवे... पार न मिले वस्तु का... आहाहा! ऐसी टीका है संस्कृत में। 'ज्ञान को कारणपने

ग्रहकर...' उसका अर्थ कि जब क्रमबद्ध का निर्णय करते हैं तो सर्वज्ञस्वभाव का कारण ग्रहण करके क्रमबद्ध का निर्णय होता है। और सर्वज्ञस्वभाव जो अन्दर में है... सूक्ष्म बात है, प्रभु! वीतरागमार्ग कोई अलौकिक है। आहाहा! इसमें यह दिगम्बर सन्तों की वाणी कहीं है नहीं। परन्तु गम्भीर बहुत है। एक-एक शब्द और एक-एक पद में गम्भीरता बहुत है। कहते हैं कि (प्रत्येक) समय में क्रमबद्ध होता है तो हमारा (उसमें) पुरुषार्थ कहाँ रहा?

यह कहा था (संवत्) १९७२ के वर्ष में। ७२ के वर्ष में। ६३ वर्ष हुए। उस समय चर्चा हुई थी, सम्प्रदाय में। उसमें थे न हम तो। हम तो ... सम्प्रदाय में आये नहीं। हम तो अन्तर में सत्य (लगेगा), वह लेंगे। ऐसा प्रश्न उठा (संवत्) ७२ में कि केवलज्ञानी ने देखा, ऐसा होगा। अपने क्या पुरुषार्थ कर सके? भगवान ने जब देखा (होगा), तब पुरुषार्थ होगा। हम पुरुषार्थ कैसे कर सके? ऐसा प्रश्न दो वर्ष चला (संवत्) ७० और ७१। नयी-नयी दीक्षा थी। २३-२४ वर्ष में दीक्षा ली थी। डेढ़ वर्ष बाद, २५ वर्ष की उम्र में ये चर्चा प्रगट की। तब तक बोले नहीं हम। सुनते थे। एक गुरुभाई था, वह बारम्बार ऐसा कहा करे। मैंने ऐसा कहा... भाई ने बताया था वहाँ रामजीभाई को। सरवा। विंछीयाथी पालियाद जाते सरवा है। ७२ के बात है। ७२। ६३ वर्ष हुए। ६० और ३। तुम्हारे जन्म से पहले। ४४ + १९ वर्ष हुए।

ऐस प्रश्न निकला तो कहा, प्रभु! तुम कहते हो यह बात मुझको नहीं बैठती। क्यों? केवली ने देखा ऐसा होगा, इतनी बात तो बराबर है। परन्तु पुरुषार्थ क्या करे? तो हम तो कहते हैं कि केवली जगत में हैं... इस जगत में एक समय की ज्ञान की पर्याय में तीन काल—तीन लोक जाननेवाले हैं, ऐसे अनन्त सिद्ध हैं। लाखों केवली हैं, महाविदेह में बीस तीर्थंकर हैं। केवलज्ञानी हैं, एक समय में तीन काल—तीन लोक को जाननेवाली पर्याय की सत्ता है, तो इस सत्ता का स्वीकार है पहले? पश्चात् उसने देखा ऐसा होगा। यह (संवत्) ७२ की बात है। ६३ वर्ष पहले की। पूर्व का संस्कार था न!

वास्तव में यह बात तो ८० गाथा में चलती है। ८०-८१-८२ गाथा में प्रवचनसार में। यह (प्रवचनसार) तो हाथ में भी नहीं आया था ७२ में। ७८ में (हाथ में) आया।

परन्तु बात वही अन्दर से आयी। ८०-८१-९२ गाथा है न प्रवचनसार। '**जो जाणदि अरिहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं**' जो कोई अरिहंत के द्रव्य-गुण-पर्याय जाने '**सो जाणदि अप्पाणं..**' अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय तो परद्रव्य हैं। परद्रव्य को जानना... यहाँ तो कहा है कि परद्रव्य के द्रव्य-गुण-पर्याय जानना, वह तो विकल्प है। अरे! यह तो विकल्प है, परन्तु अपने आत्मा के द्रव्य-गुण-पर्याय—तीन का विचार करना, यह भी विकल्प है। (परम) आवश्यक अधिकार, नियमसार। सब आधार देने जावे तो देर लगे। नियमसार, आवश्यक अधिकार में ऐसा लिया है कि भगवान के द्रव्य-गुण-पर्याय तो परद्रव्य है। भगवान तो ऐसा कहते हैं कि परद्रव्य का विचार करेगा तो तेरी दुर्गति होगी। मोक्षपाहुड़ में १६वीं गाथा में ऐसा कहा।

भगवान ने ऐसा कहा, कुन्दकुन्दाचार्य ने ऐसा कहा कि हमारा लक्ष्य करेगा तो तुझे राग होगा और तेरी दुर्गति अर्थात् चैतन्य की गति नहीं होगी। यहाँ तो ऐसा कहा, '**जो जाणदि अरिहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं, सो जाणदि अप्पाणं**' ऐसा क्यों कहा? यह तो निमित्त से कथन किया। कि सर्वज्ञ की पर्याय एक समय में पूर्ण त्रिकाल (जानती) है, तो ये पर्याय निकली कहाँ से? वह सर्वज्ञशक्ति में से निकली है। सर्वज्ञ जो गुण है न अन्दर? ४७ शक्ति में है। उस सर्वज्ञ (गुण) में से यह सर्वज्ञ पर्याय निकली है। अरिहन्त के द्रव्य-गुण और पर्याय का निर्णय करने जाते हैं, तो अपने द्रव्य में सर्वज्ञशक्ति है, उसका निर्णय होता है, तब उसको क्रमबद्ध और अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय व्यवहार से जानने में आये। सूक्ष्म बात है, भगवान!

क्रमबद्ध होता (है अर्थात्) जिस समय में जो पर्याय होनेवाली (है, वह) होगी। आगे-पीछे नहीं, पर से तो नहीं, परद्रव्य से तो नहीं। निश्चय से तो यहाँ यह लिया है कि क्रमबद्ध का जब निर्णय होता है तो अरिहन्त के केवलज्ञान का तो निर्णय उसको हुआ, वह तो पर है, परन्तु अपना निर्णय हुआ कि मैं सर्वज्ञस्वभावी हूँ। आहाहा! मेरी चीज ही सर्वज्ञस्वभावी है। और सर्वज्ञस्वभाव न हो तो पर्याय में सर्वज्ञपना आयेगा कहाँ से? समझ में आया? तो सर्वज्ञस्वभाव का जब निर्णय करते हैं, तब क्रमबद्ध का निर्णय आ गया, तब उसको पुरुषार्थ आ गया। केवली ने देखा, ऐसा होगा, तो पहले केवली

की श्रद्धा है? और केवली की श्रद्धा से पहले अपना सर्वज्ञस्वभाव है, उसकी श्रद्धा (है)? आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो प्रभु का विरह पड़ा और आ पड़े, बापू! आहाहा! यह बात कहाँ से कब किस प्रकार आती है? वह भी... अन्तर से आती है। तैयार रट रखी है, ऐसा नहीं। कल क्या आया था, उसका भी ख्याल नहीं है। कल आया था व्याख्यान में वह सारी जिन्दगी में नहीं कहा, ऐसा आया था। आहाहा! तब क्या आया था, यह भी (याद नहीं)।

मुमुक्षु : अन्तर से आती है...

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! अन्दर से आती है बात।

यहाँ कहते हैं कि क्रमवर्ती और अक्रमवर्ती नाम का अन्दर गुण है, तो सर्वज्ञस्वभाव का जब निर्णय करते हैं, तब द्रव्य का निर्णय करने में क्रमवर्ती और अक्रमवर्ती नाम के गुण का निर्णय भी साथ में आ गया। थोड़ी सूक्ष्म बात है, भाई! समझ में आया? जैसे सर्वज्ञ जगत में हैं (और) उन्होंने देखा ऐसा होगा, तो यह सर्वज्ञपर्याय आयी कहाँ से? यह उनकी सर्वज्ञशक्ति में से आयी। '**अप्पाणं जाणहि**' है न? मैं भी सर्वज्ञशक्तिवान हूँ, मेरा स्वभाव ही सर्वज्ञस्वभाव है। कोई एक चीज़ का करना, वह तो है नहीं, परन्तु उसको जाने बिना रहे ऐसा (स्वभाव) नहीं। तीन काल—तीन लोक के द्रव्य-गुण-पर्याय हैं, उसे एक पर्याय में जानने की मेरी सामर्थ्य है, यह पर्याय सर्वज्ञस्वभाव में से आती है। कपूरचन्दजी! बहुत सूक्ष्म बात है, भगवान! आहाहा!

तो ऐसा जब निर्णय करने जाते हैं, तो यह क्रमवर्ती—क्रमबद्ध में जिस समय में जो पर्याय होनेवाली है (वह होगी)... उन्हें तो न बैठी। बड़ी चर्चा हुई थी वर्णीजी के साथ। १३ के वर्ष। यह बात न बैठी। (उन्होंने कहा), एक के बाद एक होगी, परन्तु यही होगी ऐसा नहीं। यही कहा कि जो (होनेवाली है), वही होगी। आगे-पीछे का कोई प्रश्न ही नहीं, इसके पीछे यही आयेगी—ऐसा ही है। (उनका कहना था कि एक के बाद दूसरी) आयेगी, परन्तु इसके बाद यही आयेगी, ऐसा नहीं। कहा, नहीं; इसके बाद यही आयेगी ऐसा नियम है। यह तो (संवत्) २०१३ के वर्ष की बात है। तुम थे या नहीं? नहीं थे। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **क्रमबद्ध ऐसे अपने परिणामों से... अपने परिणामों से...** आहाहा! एक ओर ऐसा कहे कि पर्याय द्रव्य में है नहीं और द्रव्य पर्याय में आता नहीं। समझ में आया? आहाहा! क्योंकि दो चीज़ है, अस्तित्व है। पर्याय का अस्तित्व है, द्रव्य का अस्तित्व है। दोनों अस्तित्व का हेतु नहीं होता। है, उसका हेतु नहीं। चाहे तो द्रव्य हो, चाहे तो गुण हो, चाहे तो पर्याय हो, है सत्... बन्ध अधिकार में है समयसार में। अहेतुक। पर्याय अहेतुक है। यह तो ठीक, परन्तु क्रमबद्ध का निर्णय करने से जो पर्याय उत्पन्न हुई—द्रव्य का लक्ष्य (करने से) जो पर्याय उत्पन्न हुई—निश्चय से उस पर्याय को द्रव्य की—ध्रुव की भी अपेक्षा नहीं। क्योंकि जो पर्याय है, वह सत् है। सत् को हेतु नहीं। आहाहा! उसका—ध्रुव का हेतु नहीं उसको (-पर्याय को)। बहुत सूक्ष्म बात है। आहाहा!

तो वह परिणाम अपने से... एक ओर ऐसा कहे कि उस परिणाम को ध्रुव की अपेक्षा नहीं है। यहाँ कहे कि क्रमबद्ध अपने परिणामों से उत्पन्न होता... समझ में आया? द्रव्य की—ज्ञायक की दृष्टि हुई तो जो निर्मल परिणाम उत्पन्न हुआ, विकार की यहाँ बात नहीं। विकार परिणाम में आता है... यह कल कहा था। भाव नाम का एक गुण है आत्मा में... भाव नाम के दो गुण हैं। आत्मा में भाव नाम के दो गुण हैं। ४७ शक्ति में है। एक भावगुण का ऐसा अर्थ है कि जिस समय में जो पर्याय होनेवाली है, वह भावगुण के कारण से होगी। (भाव) गुण के कारण से होगी। उस गुण का अनन्त गुण में रूप है, तो अनन्त गुण में भी जिस समय में जो पर्याय होगी, वह भावगुण के कारण से (होगी) और भावगुण का अनन्त गुण में रूप है, वह अनन्त गुण के (अपने) कारण से है। आहाहा! जिस समय में जो पर्याय अनन्त गुण की होनेवाली है....

यहाँ यह शब्द है कि **अपने परिणामों से...** 'परिणाम से' ऐसे नहीं कहा, 'परिणामों से'। अनन्त लिये हैं। है? बहुवचन है। पहली लाईन में। यह तो गम्भीर बात, बापू! दिगम्बर सन्तों की बात कोई अलौकिक है। यहाँ तो 'क्रमबद्ध' एक शब्द लिया है।

मुमुक्षु : क्रमबद्ध शब्द ही अलौकिक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अलौकिक है। आहाहा! और क्रमबद्ध का जिसको निर्णय हुआ,

उसको सर्वज्ञस्वभावी प्रभु का निर्णय हुआ। मैंने तो उस समय ही कहा था ७२ के वर्ष में। वह कहे कि भगवान ने देखा तब भव होगा, इतने भव होंगे। सुनो! बाहर से कहते थे। गुरु तो सुनते थे... गुरु सुनते थे। गुरु बोलते नहीं थे। गुरुभाई था वह कड़क था, बहुत अधिक कषायी।

कहा, भगवान का ज्ञान (हुआ) और अपने सर्वज्ञस्वभाव का निर्णय हुआ, उसके केवलज्ञानी ने भव देखे ही नहीं है। समझ में आया? भव है ही नहीं। दो-चार भव हो, कदाचित् एक-दो हो, वह ज्ञान का ज्ञेय है। ७२ में कहा था। ६३ वर्ष पहले। वहाँ की (-महाविदेह की) बात थी न। भगवान तीन लोक के नाथ के पास थे। यह तो (पीड़ा) सहन नहीं हुई तो यहाँ जन्म हो गया है। वहाँ कहा कि सर्वज्ञ जगत में हैं, ऐसी सत्ता का जब स्वीकार करने जाता है तो उसका लक्ष्य पर्याय पर नहीं रहता, उसका लक्ष्य गुण-गुणी भेद पर नहीं रहता; उसका लक्ष्य द्रव्य पर जाता है—अभेद पर जाता है, तब क्रमबद्ध का निर्णय सच्चा होता है। तो केवलज्ञानी ने देखा, (ऐसा) होगा—(ऐसी) केवलज्ञान की सत्ता का स्वीकार किया (और) अपनी सत्ता का स्वीकार किया, वहाँ पुरुषार्थ आ गया। समझ में आ गया? आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! दूसरी बात। यह क्रम और अक्रम गुण है, उसमें तो क्रमसर—क्रमबद्ध ही पर्याय होगी। उस गुण का धरनेवाला गुणी प्रभु है, उस गुण की जब दृष्टि होती है तो क्रमवर्ती गुण के कारण से जो क्रमबद्ध आनेवाली पर्याय है, यह ही होगी। समझ में आया? सूक्ष्म पड़े थोड़ा, परन्तु धीरे से पचाना। भाई! सूक्ष्म पड़े थोड़ा।

पश्चात् दूसरी बात। परिणामों से उत्पन्न होता है अर्थात् एक परिणाम नहीं है। आज सवेरे में प्रश्न किया था किसी भाई ने। एक समय में एक ही पर्याय उत्पन्न होती है? कहा, एक गुण की एक, परन्तु (सब मिलकर) अनन्त। 'परिणामों' लिया है न? तो अनन्त गुणों के परिणाम उत्पन्न होते हैं, एक समय में। द्रव्य में अनन्त गुण हैं और द्रव्य की जब दृष्टि हुई तो अनन्त गुण जितनी संख्या में हैं कि पार नहीं। आहाहा! आकाश के प्रदेश का अन्त नहीं। अलोक का अन्त कहाँ आयेगा? कहीं अन्त नहीं। अन्त कहाँ? लोक का अन्त है, अलोक का अन्त कहाँ? दसों दिशा में आकाश कहाँ

पूरा हुआ? कहीं अन्त नहीं... अन्त नहीं... अन्त नहीं... अन्त नहीं... यह क्या है? आहाहा! भाई! एक बार नास्तिक विचार करे तो उसे अस्ति की श्रद्धा हो जाती है कि आकाश के पीछे क्या है?

एक बार बात चली थी। वह जामनगर का दीवान था न! दीवान महेरबानजी। उसका पुत्र था, वह हमारे पास आया था ९१ में। ९१ में यहाँ आया था न तब। वह और एक डॉक्टर। दोनों आये थे। भाई! देखो! .... धुवाण गाँव है। इतना विचार तो करो, दूसरा बाजू में रखो। ये (आकाश) चीज़ है, वह कहाँ तक है? अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... योजन आगे जायें। यह चीज़ अनन्त... अनन्त... अनन्त... योजन में नहीं तो बाद में क्या है? और पीछे है तो उसका अन्त कहाँ? आहाहा! अन्दर मस्तिष्क घूम जाये, ऐसा है। मस्तिष्क अर्थात् दृष्टि। आकाश के प्रदेश का अन्त कहाँ? अन्तिम छोर। अन्तिम आकाश का प्रदेश कहाँ? 'छेल्ला' को क्या कहते हैं? लोक के बाहर अन्तिम आकाश का प्रदेश कहाँ? अन्तिम है ही नहीं। जितने प्रदेश हैं, उससे अनन्त गुने तो एक आत्मा में गुण हैं। आहाहा! ये अनन्त गुण के परिणामों से उत्पन्न होता है, ऐसा कहा। एक गुण की पर्याय नहीं। आहाहा!

श्रद्धा की पर्याय उत्पन्न होती है, आनन्द की पर्याय होती है, अरे! जितने अनन्त गुण हैं, उन सबके व्यक्त—प्रगट परिणाम उत्पन्न होते हैं। आहाहा! समझ में आया? जितनी गुण की संख्या है... द्रव्य पर दृष्टि जाने से, जितने गुण हैं संख्या में, उन सब गुण का एक अंश व्यक्त—प्रगट होता है। सम्यग्दर्शन में अकेला सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा नहीं। सम्यग्दर्शन की पर्याय में आनन्द का अंश, वीर्य का अंश... जो आत्मा में वीर्यगुण है, उस वीर्यगुण का कार्य यह है कि स्वरूप की रचना करना। शुभ और अशुभराग की रचना करना, ये वीर्यगुण का कार्य नहीं। समझ में आया? अपने में एक वीर्यगुण है—पुरुषार्थ नाम का एक गुण है। इस गुण का कार्य क्या? यह ४७ शक्ति में है। स्वरूप की रचना। जब द्रव्य की अन्तर्मुख दृष्टि हुई तो जितने अनन्त गुण हैं, उनकी प्रगट अवस्था की रचना करता है, यह वीर्य का कार्य है। आहाहा! पुरुषार्थ से होता है, ऐसे कहना है। यह पर्याय भी क्रमबद्ध में आती है, परन्तु पुरुषार्थ से होती है। समझ में आया?

वीर्यगुण है न अन्दर? वीर्यगुण अनन्त पर्याय की रचना करता है, तो पुरुषार्थ आया या नहीं? उस समय जो राग आया है... यह आत्मा में ऐसा एक भावगुण है कि षट्कारकरूप से विकृत परिणति होती है, उससे रहित होना, ऐसा भावगुण है। ४७ गुण में है। आहाहा! ऐसी बातें अब इसमें... षट्कारकरूप से विकृति होती है पर्याय में, उस पर्याय से रहित... भाव नाम का गुण है तो (विकार से) रहितपने उसका परिणमन होता है, सहितपने नहीं। यह क्रमबद्ध का निर्णय करने में द्रव्य का निर्णय होता है, तो द्रव्य में एक ऐसा वीर्यगुण है कि जो निर्मलस्वरूप की रचना करे। राग की (रचना) करे, ऐसा उसमें है ही नहीं। आहाहा! हाँ, राग आता है, तो राग सम्बन्धी यहाँ ज्ञान करती है ज्ञान (पर्याय)। यह राग है तो उसका ज्ञान करता है, ऐसा भी नहीं। यह ज्ञान की पर्याय स्व का ज्ञान और पर का ज्ञान करती है। पर है तो पर का ज्ञान करती है, ऐसा भी नहीं। यह ज्ञान की पर्याय अपने स्व-परप्रकाशक सामर्थ्य से प्रगट होती है। राग हो, परन्तु राग है तो यहाँ राग का ज्ञान हुआ, ऐसा है नहीं।

अपने ज्ञान की पर्याय में स्व-परप्रकाशक की सामर्थ्य होने से... अनन्त पर्याय में प्रत्येक पर्याय में वीर्य की रचना है। आहाहा! ये अनन्त परिणाम अपने पुरुषार्थ से प्रगट होते हैं और जिन परिणामों से (द्रव्य) उत्पन्न होता है, वे निर्मल हैं। मलिन की बात यहाँ है नहीं। आहाहा! और उस समय में जो राग है, उस सम्बन्धी का ज्ञान अपने से अपने कारण से उत्पन्न होता है। राग है तो राग का ज्ञान होता है, ऐसा भी नहीं। ऐसा कहा न? **अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ...** राग ये अपना परिणाम है नहीं। आहाहा! राग, दया, दान आदि अपने स्वभाव का परिणमन है नहीं। क्यों? कि आत्मा में जितने गुण हैं, उसमें विकृति कर सके, ऐसा कोई गुण नहीं। अनन्त गुण पवित्रता की परिणति कर सके, ऐसे गुण हैं। कोई गुण विकृति कर सके ऐसा कोई गुण ही नहीं अनन्त में। आहाहा! विकृति तो होती है, वह पर्यायदृष्टि से निमित्त के वश होकर होती है। उसका भी ज्ञानी को... क्रमबद्ध का जब निर्णय हुआ, तब राग का ज्ञान, राग हुआ तो राग सम्बन्धी ज्ञान हुआ, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

क्रमबद्ध ऐसे अपने परिणामों से... देखो! अनन्त अपने निर्मल परिणामों से...

जितने गुण हैं, उतनी अनन्त पर्याय आयी। एक गुण की एक, परन्तु अनन्त गुण की अनन्त पर्याय एक समय में हुई। सम्यग्दर्शन जहाँ हुआ, क्रमबद्ध का निर्णय हुआ, सर्वज्ञगुण का निर्णय हुआ, सर्वदर्शी, सर्वज्ञगुण का धरनेवाला द्रव्य का निर्णय हुआ, तो अनन्त-अनन्त जितने गुण हैं, सबमें निर्मलपने परिणाम उत्पन्न होते हैं। आहाहा! बहुत सूक्ष्म भाई! समझ में आये, इतना समझना, बापू! यह तो परमातमा तीन लोक के नाथ उनके घर की बातें हैं। उनके पेट की बातें है, यह तो। आहाहा!

मुमुक्षु : ..... रचना करता है तो पुरुषार्थ सिद्ध हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुरुषार्थ है साथ में। पुरुषार्थ बिना कोई पर्याय ही होती नहीं। क्योंकि वीर्यगुण जो है, उस वीर्यगुण का अनन्त गुण में रूप है। तो अनन्त गुण में भी वीर्यशक्ति... वीर्य नाम की शक्ति का रूप है। जब द्रव्य पर दृष्टि हुई, तो अनन्त गुण में वीर्य से पर्याय प्रगट होती है। भगवान ने देखा ऐसा होगा, ऐसा निर्णय जब हुआ, तब अपने में अनन्त पर्याय पुरुषार्थ से उत्पन्न होती है। आहाहा! डाह्याभाई!

दूसरी बात। ये **परिणामों से उत्पन्न होता हुआ...** परिणामों से उत्पन्न होता है, उस समय राग, अजीव आदि सारी बाह्य चीज़ हो, परन्तु उस सम्बन्धी का अपना ज्ञान अपने से उत्पन्न होता है। उस चीज़ को देखते हैं या चीज़ को जानते हैं, ऐसा नहीं। परचीज़ को देखता-जानता है, ऐसा है नहीं, यह तो अपने को ही देखता-जानता है। क्योंकि पर में और अपनी पर्याय में अत्यन्त अभाव है। दोनों में अत्यन्त अभाव है, तो यह पर्याय उसको देखती है, यह कहना तो व्यवहार से कथन है, असद्भूतव्यवहारनय का कथन है। उस सम्बन्धी... लोकालोक को अपने द्रव्य सम्बन्धी जो अपनी (ज्ञान)पर्याय उत्पन्न हुई, ये अपने सामर्थ्य से अपने कारण से उत्पन्न हुई है। लोकालोक है तो उत्पन्न हुई ऐसा भी नहीं है। आहाहा! अब इतना सब जानना कठिन पड़े, बापू! परन्तु मार्ग तो यह है। आहाहा!

अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ... दूसरे के परिणाम को जीव नहीं कहा। पर्याय द्रव्य में जाती नहीं और द्रव्य पर्याय में आता नहीं। यहाँ यह कहा कि परिणामों से उत्पन्न होता हुआ जीवद्रव्य ही है। समझ में आया? ये अनन्त गुण का परिणमन...

आहाहा! जहाँ क्रमबद्ध का निर्णय करने जाते हैं तो ज्ञायकस्वभाव पर... 'अकर्तापना' ऊपर यह शब्द है। देखो! ऊपर। **आत्मा का अकर्तृत्व दृष्टान्तपूर्वक कहते हैं...** अकर्तृत्व (शब्द) है गाथा के ऊपर। अकर्तृत्व सिद्ध करना है। क्रमबद्ध में पर की पर्याय का कर्तापना है नहीं, ज्ञातापना सिद्ध करना है। अकर्तृत्व सिद्ध करना है उसका अर्थ, अस्ति से ज्ञातापना सिद्ध करना है। आहाहा! ज्ञातापना जब सिद्ध हुआ, तब राग का भी कर्ता नहीं और राग से ज्ञान होता है, ऐसा भी नहीं। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! समझ में आया?

यह अनन्त शुद्ध परिणामों से... **अपने परिणामों से...** ऐसा शब्द कहा न? पर का परिणाम नहीं, राग का भी नहीं। **अपने परिणामों से...** जो अपने गुण अनन्त हैं, उनकी पवित्र परिणति हो, ये अपने परिणाम हैं। व्यवहाररत्नत्रय है, ये अपना परिणाम नहीं और व्यवहाररत्नत्रय है, तब उसका ज्ञान यहाँ हुआ, तो यह व्यवहार का राग है तो यहाँ (ज्ञान) हुआ ऐसा भी नहीं। अपने ज्ञान की पर्याय इतनी सामर्थ्यवाली है कि पर की अपेक्षा रखे बिना स्व-पर को जानने का परिणमन अपने से होता है। सूक्ष्म बातें बहुत, बापू! आहाहा!

अपने परिणामों से... आहाहा! एक ओर कहे कि पर्याय द्रव्य की नहीं। आहाहा! पर्याय, पर्याय की है। न्यायग्रन्थ में भी आता है। आप्तमीमांसा। धर्मी और धर्म—दो भिन्न हैं। धर्मी (है, वह) धर्म नहीं और धर्म (है, वह) धर्मी नहीं। आहाहा! आप्तमीमांसा न्यायग्रंथ है, उसमें भी ऐसा आया है।... है ये परिणाम ही जीव है। आहाहा! है? बापू! वीतरागमार्ग वह कहीं हल्दी की गाँठ से गाँधी (पंसारी) हो जाये ऐसा नहीं। ये तो बड़ी गम्भीर चीज़ है। आहाहा! थोड़ा शास्त्र पढ़ा-भढ़ा इसलिए ज्ञान हो गया, ऐसा है नहीं, भाई! भगवान आत्मा का ज्ञान हो तो (सच्चा) ज्ञान होता है। आहाहा! समझ में आया?

अपने परिणामों से... एक बात। 'परिणामों से' (कहने में) अनन्त परिणाम लिये। बहुवचन। **उत्पन्न होता हुआ... उत्पन्न होता हुआ जीव ही है...** ये जीवद्रव्य ही है। ये पर्याय जीव की है, तो जीवद्रव्य ही है। आहाहा! ऐसी बात है। अरे प्रभु! आत्मा में ताकत है, एक क्षण में केवलज्ञान लेने की सामर्थ्य है। उसको ऐसी बात समझ में न

आवे, ऐसा कलंक नहीं लगाना। आहाहा! यह कलंक है। अपने को नहीं जान सकता, ऐसी बात न कहना, प्रभु! आहाहा! केवलज्ञान पूरे तीन काल—तीन लोक को जाने, ऐसी पर्याय एक क्षण में प्रगट होती है—एक समय में प्रगट होती है। आहाहा! अपने सामर्थ्य से द्रव्य का लक्ष्य करने से केवलज्ञान उत्पन्न होता है, यह मोक्ष है। इस मोक्ष के मार्ग से मोक्ष उत्पन्न हुआ, ऐसा भी नहीं। समझ में आया? मोक्ष तो अभाव है—व्यय है और व्यय की अपेक्षा उत्पाद को है नहीं। आहाहा! ये उत्पाद उत्पाद से (हुआ)। बहुत कहो तो द्रव्य के आश्रय से उत्पन्न हुआ ऐसा कहने में आता है। इस मोक्षमार्ग का तो व्यय-अभाव हो जाता है। वरना केवलज्ञान मोक्षपर्याय है, वह भाववाली है। ये भाव उत्पन्न कहाँ से हुआ? कि द्रव्य में से उत्पन्न हुआ, ऐसा एक अपेक्षा से कहने में आता है। द्रव्य कर्ता और पर्याय कर्म, यह भी उपचार से कथन है। आहाहा!

कलशटीका में आता है। कलशटीका है न? यह कलश है न? कलशटीका है न? अमृतचन्द्राचार्य। उसमें ऐसा आता है। निर्मल परिणाम अपना कार्य और आत्मा कर्ता, ये भी उपचार से (कथन) है। आहाहा! अरे भगवान! तेरी बलिहारी तो अन्दर है, तुम तो भगवान हो। चैतन्य हीरा तेरे हीरे की कीमत कहाँ? आहाहा! 'बड़ा बड़ाई बोले नहीं, बड़ा न बोले बोल, हीरा मुख से ना कहे, लाख हमारा मोल'—ऐसा कहते हैं। ऐसे भगवान (आत्मा) की कीमत करने नहीं जाना, बापू! ये तो कीमत बिना की चीज़ है। यह तो महाचीज़ है। आहाहा! बापू! यह कोई साधारण चीज़ नहीं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान कोई साधारण चीज़ नहीं। इसके बिना सब ले ले, व्रत ले लो, प्रतिमा ले लो—ये सब धूल है। आहाहा! मूल चीज़ का जहाँ ठिकाना है नहीं, उसमें व्रत, तप, पूजा, प्रतिमा और भक्ति आयी कहाँ से? यह सब तो राग है। यह धर्म का कारण है, (ऐसा मानना) तो मिथ्यात्व है। आहाहा! कठिन बात है, भाई!

यहाँ कहते हैं, आहाहा! **अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ...** आहाहा! जीव है, ऐसा भी नहीं कहा। **जीव ही है...** संस्कृत में है '**जीव एव**' संस्कृत में है '**जीव एव**'। जीव ही। प्रभु! तुम कहते थे कि परिणाम में द्रव्य नहीं आता (और) तुम तो परिणाम को द्रव्य कहते हो। भाई! पर से भिन्न और अपने परिणाम से अभिन्न है। अभिन्न का अर्थ, परिणाम द्रव्य में एकमेक होता है, ऐसा नहीं। अभिन्न का अर्थ, परिणाम परिणामी

में अभेद होता है—एकमेक होता है, ऐसा नहीं। यह (परिणाम स्व)सन्मुख हुआ तो पर से विमुखता हो गयी, तो परिणाम आत्मा में अभेद हुआ, ऐसा कहने में आया। आहाहा! ऐसा मार्ग तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव... अरे! जिन्हे सुनने को न मिले, वे विचारे कब और बैठै कब? बापू! और ऐसे मनुष्यदेह चला जाता है। उसकी मृत्यु का जो समय है, वह तो निश्चित है। जितने दिन जाते हैं, वह मृत्यु के समीप जाता है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **अपने परिणामों से... अपने परिणामों से...** ये अपने परिणाम में निर्मल लेना, विकारी नहीं लेना। विकार होता है, पर जहाँ द्रव्य की दृष्टि हुई, उसमें भाव नाम का गुण है, उस कारण से विकार से रहित परिणमन (हुआ), वह उसका है। विकार का जो ज्ञान हुआ, विकार की श्रद्धा हुई, ये हुई अपने से। विकार है तो ज्ञान हुआ और विकार है तो श्रद्धा हुई—ऐसा नहीं। यह श्रद्धा और ज्ञान हुआ, यह अपना परिणाम है। राग अपना परिणाम नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है। कल आया, उसका यही सब आवे कहीं? आहाहा!

जीव ही है... आहाहा! एक ओर प्रभु ऐसा कहे कि परिणाम ध्रुव की अपेक्षा से नहीं (होते)। १०१ गाथा, प्रवचनसार। जो परिणाम उत्पन्न होते हैं, उसको ध्रुव की अपेक्षा नहीं, उसको व्यय की अपेक्षा नहीं, ध्रुव को उत्पाद की अपेक्षा नहीं। आहाहा! अरे भाई! यह अवसर कब मिले? बापू! भगवान सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ का हृदय यह है, उनका अभिप्राय ये है। समझ में आया? आहाहा! ये अपने (परिणाम) **जीव ही है...** परिणाम उसका है न? उससे उत्पन्न हुआ है न? निमित्त से उत्पन्न हुआ है, ऐसा भी नहीं। व्यवहाररत्नत्रय राग है तो उससे यहाँ सम्यग्दर्शन हुआ ऐसा है नहीं। व्यवहाररत्नत्रय का राग है, तो राग के कारण से उसका यहाँ ज्ञान हुआ, ऐसा है नहीं। अपने ज्ञानगुण आदि जो अनन्त गुण-शक्ति है, ये अपने कारण से अनन्त (गुण की) पर्यायरूप परिणमन होता है। आहाहा! द्रव्य भी स्वतन्त्र, गुण भी स्वतन्त्र और अनन्त पर्याय उत्पन्न होती है, वह भी स्वतन्त्र। आहाहा!

यह पर्याय उत्पन्न होती है, (जिसे) यहाँ **जीव ही...** कहा, (पर) निश्चय से ये

परिणाम षट्कारक से उत्पन्न हुआ है। जो निर्मल पर्याय सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि हुए, ये पर्याय का कर्ता पर्याय, पर्याय का कार्य पर्याय, पर्याय का साधन पर्याय, पर्याय से पर्याय (हुई), पर्याय होकर पर्याय रखी, पर्याय के आधार से पर्याय है। आहाहा! अरेरे! क्या मार्ग प्रभु का और क्या लोग उसे माने? आहाहा! और सत्य बात आयी तो कहे, ऐ... एकान्त है। अरे प्रभु! आहाहा! यह सम्यक् एकान्त ही है। यह चीज़ ही ऐसी है। नय है, वह एक अंश का लक्ष्य ही करता है, तो एकान्त है। प्रमाण है, वह दोनों (नयों) का लक्ष्य करता है, यह अनेकान्त है। द्रव्य का भी ज्ञान और पर्याय का ज्ञान। यहाँ तो द्रव्य का ज्ञान हुआ, तब पर्याय का ज्ञान—निर्णय यथार्थ हुआ। क्रमबद्ध का निर्णय कब हुआ? जब द्रव्य का निर्णय यथार्थ हुआ, तो क्रमबद्ध का निर्णय हुआ। तब सर्वज्ञ जगत में हैं परद्रव्य, ऐसा भी व्यवहार से निर्णय उसको हुआ। समझ में आया? आहाहा!

अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ जीव ही है... आहाहा! कल तो बहुत कहा था, कहीं सब याद रहता है? कागज आया था कि कल बोला, वह फिर से बोलना, ऐसा। यहाँ तो आते-आते आवे तब आवे। आहाहा! **अजीव नहीं...** यह क्या कहा? कि जो अनन्त परिणामों से उत्पन्न हुआ... राग आया तो राग से यहाँ ज्ञान हुआ, ऐसा नहीं। अजीव नहीं, ये अजीव से नहीं हुआ। राग ये अजीव है, शरीरादि अजीव हैं, तो अनन्त परिणाम जो उत्पन्न हुए, ये अजीव से नहीं हुए, राग से नहीं हुए। राग का ज्ञान राग से नहीं हुआ। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात है। अब शिक्षण शिविर में बाहर से कहाँ से आये हैं लोग। ख्याल में तो लेना चाहिए न? यह मनुष्यपना चला जायेगा। आहाहा!

और विपरीत श्रद्धा थोड़ी भी यदि रह गयी... सातवें अध्याय में कहा न? मोक्षमार्ग प्रकाशक में सातवें अध्याय में। पाँचवें अध्याय में गृहीत मिथ्यात्व की बात की, छठवें अध्याय में कुगुरु-देव (की बात की)। सातवें अध्याय में, जैन सम्प्रदाय में जन्मे फिर भी मिथ्यात्व कहाँ रह जाता है, उसका अधिकार है। मिथ्यात्व का एक अंश शल्य भी संसार का कारण है। सातवाँ अध्याय, मोक्षमार्ग प्रकाशक। पहले शुरुआत में कहा। आहाहा! दिगम्बर जैन में जन्मे तो भी कहाँ मिथ्यात्व रह जाता है, उसकी खबर नहीं उसे। उसका अधिकार सातवाँ है।

यहाँ कहते हैं, जो अपना परिणाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र... क्रमबद्ध का निर्णय करने में द्रव्य के निर्णय में ये आया, ये राग से नहीं, ये अजीव से नहीं। यहाँ तो अजीव के साथ लेंगे। वास्तव में तो इस (-स्व) जीव की अपेक्षा से भगवान पंच परमेष्ठी भी जीव नहीं। क्या कहा? इस स्व(द्रव्य) की अपेक्षा से पर अद्रव्य है। तीन लोक के नाथ आदि पंच परमेष्ठी हैं, वे भी इस स्व(द्रव्य) की अपेक्षा से अद्रव्य हैं, इस स्व(क्षेत्र) की अपेक्षा से अक्षेत्र है, इस (स्व)काल की अपेक्षा से अकाल है और इस (स्व)भाव की अपेक्षा से अभाव है। आहाहा! इस द्रव्य की अपेक्षा से तो ये अद्रव्य है, तो इस जीव की अपेक्षा से पंच परमेष्ठी (स्व)जीव नहीं तो अजीव हैं। आहाहा! समझ में आया? थोड़ी सूक्ष्म बात है, भाई! समझने की चीज़ तो ये है। इसके बिना—ऐसा यथार्थ ज्ञान, यथार्थ श्रद्धा बिना—जो कुछ करे, वह सब संसार है।

शुभभाव, वह संसार है। दया, दान, व्रत, भक्ति, प्रतिमा के परिणाम ये सब शुभ (भाव हैं), संसार है। संसार, कोई स्त्री, कुटुम्ब-परिवार, लक्ष्मी संसार नहीं। संसार तो अपनी पर्याय में, अज्ञानी की अपनी पर्याय में रहता है। संसार कोई दूसरे में रहे? संसार तो विकृत पर्याय है। विकृत पर्याय तो आत्मा की पर्याय में होती है। संसार तो इसकी पर्याय में है। संसार कोई बाहर में है? स्त्री, कुटुम्ब-परिवार, लक्ष्मी ये संसार है? कि नहीं, ये तो परचीज़ है। आहाहा! संसार तो, तेरी पर्याय में शुभराग और अशुभराग जो उत्पन्न होता है, यह संसार है। आहाहा! भारी कठिन बात, भाई! यह संसार अजीव है। समझ में आया? तो उस अजीव से यहाँ ज्ञानपरिणाम उत्पन्न हुआ या अनन्त परिणाम उत्पन्न हुए, ऐसा नहीं। आहाहा! कठिन बात है, भाई! आहाहा!

तीन लोक के नाथ की वाणी आती होगी वह कैसी होगी? आहाहा! सन्त ऐसी बात करे, छद्मस्थ मुनि ऐसी बात करे, तो सर्वज्ञ की वाणी—दिव्यध्वनि में कैसा (आता होगा)? इन्द्र भी पिल्ले के बच्चे जैसे समवसरण में सुनने बैठे। एक भवतारी, पहले स्वर्ग का इन्द्र है, वह एक भवतारी है। और उसकी मुख्य स्त्री—इन्द्राणी है, करोड़ों में एक मुख्य (होती) है, वह भी एकभवतारी है। दोनों मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाले हैं। वे जब सुनने को जाते हैं तो वाणी कैसी होगी? प्रौषध करो, व्रत करो। यह तो कुम्हार भी कहता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : श्रावण महीने के सोमवार आवे तो सब कहे कि अपवास करो।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपवास करो सोमवार के। यह बैठो श्रावण के महीने में। श्रावण की एकम आज है। सिद्धान्त के हिसाब से तो श्रावण मास का एक पक्ष चला गया। (अषाढ़) कृष्ण ये श्रावण कृष्ण थी, अषाढ़ शुक्ल ये श्रावण कृष्ण थी। ये तो दूसरा पक्ष (शुरु हुआ)। श्रावण शुक्ल एकम दूसरा पखवाड़ा (-पक्ष) है। पहला पखवाड़ा चला गया। बाहर के हिसाब से अषाढ़ कहते हैं, सिद्धान्त के हिसाब से अषाढ़ कृष्ण की अमावस्या से श्रावण कृष्ण की अमावस्या थी। आज श्रावण शुक्ल एकम है। आहाहा!

अजीव नहीं... इतना आया, लो। कल का थोड़ा बाकी रह गया था यह जरा... **इसी प्रकार...** जीव की भाँति **अजीव भी...** अजीव भी... वह जीव लिया (इसलिए) अजीव भी... **क्रमबद्ध...** आहाहा! उसमें भी क्रमसर पर्याय होनेवाली होती है। ये मन्दिर बना तो उसकी पर्याय से बना है। किसी गारीगर ने बनाया है, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहार का एक ग्रास नीचे (थाली में) है, वह ऐसा ऊँचा होता है, यह उसकी पर्याय से होता है, हाथ से नहीं, इच्छा से नहीं। आहाहा! अजीव भी **क्रमबद्ध...** आहाहा! शरीर की ऐसी पर्याय रहे, वह क्रमबद्ध में आनेवाली है, वह आयी है। मैं ध्यान रखूँ तो बराबर रह सके, पथ्य आहार करूँ तो निरोगता रहे, ये बात सब (झूठी है)। आहाहा! दवा ये परद्रव्य की पर्याय को निरोग करे, यहाँ मना करते हैं। क्योंकि निरोगता उसकी—शरीर की पर्याय का क्रम है तो होता है।

मुमुक्षु : ..... तो पूरा आयुर्वेद खोटा पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : ये व्यवहार कहा। .... आयुर्वेद में... वैद्य की दवा करने से (रोग) मिटता है, ऐसा आया है अकलंकदेव में। यह तो व्यवहारनय का कथन है।

एक द्रव्य की पर्याय दूसरे द्रव्य को कभी छूती नहीं। तीसरी गाथा समयसार की। एक द्रव्य अपने गुण-पर्याय(रूप) धर्म को चूमता है। टीका है। प्रत्येक पदार्थ अपने गुण और पर्यायरूपी धर्म को छूता है, परद्रव्य को कभी छूता ही नहीं। यह आत्मा है (इसने) कभी कर्म को छुआ भी नहीं। इस शरीर को भी आत्मा ने कभी छुआ नहीं। शरीर को आत्मा को छुआ नहीं, आत्मा को शरीर को छुआ नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह

लकड़ी ऊँची होती है, देखो! तो कहते हैं कि क्रमबद्ध पर्याय से ऐसे ऊँची हुई है। अँगुली का आधार है तो ऊँची हुई, अँगुली से ऊँची हुई—ऐसा तीन काल में है नहीं। आहाहा! परन्तु वह संयोग से देखता है। ये यहाँ (संयोग को) देखता है, यहाँ (स्वभाव को) देखता नहीं। लालचन्दभाई! ये यहाँ देखते हैं। यहाँ (स्वभाव) देखे तो उसकी पर्याय यहाँ थी (-स्वयं से) है। परन्तु यह देखे हैं कि जो यह है तो... परन्तु वह तो दूसरी चीज़ है। आहाहा! समझ में आया?

अजीव भी क्रमबद्ध अपने परिणामों से... इसमें भी बहुवचन आया। अजीव बहुत हैं न? बहुत अनन्त है। सब अनन्त... आहाहा! ये पासडा (-पसली) है न पासडा? वो नीचे की (हड्डी के) आधार से नहीं रहा। एक-एक परमाणु अपने षट्कारक आधार से परमाणु रहा है, पर के आधार से नहीं। यह वह कौन माने?

मुमुक्षु : संयोगदृष्टिवाला न माने।

पूज्य गुरुदेवश्री : संयोग (दृष्टि) वाला न माने। वे संयोग से देखते हैं। यह अपने से रहा है, यह नहीं देखते।

मुमुक्षु : यह खम्बा बनाया, वह किसने बनाया?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसने बनाया? पर्याय को बनाया है। जड़ की पर्याय से खम्बा बना है। यह पुस्तक बनती है तो जड़ की पर्याय से बनती है। आहाहा! अक्षर लिखते हैं, तो ये अक्षर इच्छा से तो नहीं हुए हैं, परन्तु कलम से भी नहीं हुए हैं। आहाहा! ऐसी बात है। ऐसी प्रभु की पुकार है, तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव की पुकार है। अजीव परमाणु की प्रत्येक गुण की पर्याय जिस समय में होनेवाली होती है, वह अपने से होती है, पर के कारण से होती नहीं। आहाहा!

इसका भी विवाद था न? १३ के वर्ष में चर्चा बहुत हुई थी। यहाँ भी ७१ के वर्ष से हम कहते हैं। ७१ के वर्ष, ६४ वर्ष पहले। कि विकार अपने में कर्म से होता नहीं। ७१ के वर्ष से। हमने तो लाठी में कहा था। यह प्रश्न वर्णीजी के साथ चला। वर्णीजी कहे, ऐसा नहीं है, कर्म से विकार होता है। सर्वदा (होता है), किसी भी समय निमित्त से नहीं होता है, ऐसा नहीं। कहा, तीन काल—तीन लोक में निमित्त से होता नहीं।

अलग बात है। ....भाई! आहाहा! परद्रव्य की पर्याय... एक परमाणु की पर्याय दूसरे परमाणु की पर्याय को छूता नहीं, करता नहीं। तो परमाणु की पर्याय जीव करे ऐसे कैसे बने? क्योंकि अजीव का परिणाम उत्पन्न होता है, वह अजीव ही है। आहाहा!

ये **अजीव भी क्रमबद्ध अपने परिणामों से...** आहाहा! इस क्रमबद्ध में महा भगवन्त विराजते हैं (अर्थात्) क्रमबद्ध का निर्णय करने से भगवान (आत्मा) नजर में आता है, तब क्रमबद्ध का सच्चा निर्णय होता है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! **अजीव भी क्रमबद्ध...** आहाहा! यह पुस्तक है, यह घोडी के आधार से रही है, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। यह परमाणु अपनी पर्याय के अपने आधार से, अपने कारण से पर्याय में है। परमाणु अपनी पर्याय में अपने कारण से है। पर के कारण से परमाणु नहीं। एक परमाणु दूसरा... सिद्धान्त में ऐसा (आता) है कि दो गुण अधिक हो... यहाँ तीन गुण हो और दूसरा (परमाणु) पाँच गुण हो, (तो पहला) पाँच गुण (रूप) हो जाता है, लो। तत्त्वार्थसूत्र में ऐसा है। यह तो निमित्त का कथन है। परमाणु में पंच गुण स्निग्धता की पर्याय है और दूसरे परमाणु में तीन गुण की है। यहाँ पाँच गुण (वाला) यह जाये तो (दूसरा) पाँच गुण (रूप) हो जाता है। तो पाँच गुण के मिलने से पाँच गुण होता है, ऐसा नहीं। क्रमबद्ध में पाँच होने का काल उसका है, तो पाँच (गुणरूप) हुआ है। आहाहा! विशेष आयेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)